ओउम् श्रीपरमात्मने नमः

अध्याय दशम् (10)

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले, हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचन श्रवण कर जो कि मैं तुझ अतिशय प्रेम रखने वाले के लिये हित की इच्छा से कहुँगा (1) हे अर्जुन! मेरी उत्पत्ति को अर्थात विभूतिसहित लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदिकारण हूँ (2) जो मेरे को अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित और अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है (3) हे अर्जुन ! निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता, क्षमा, सत्य तथा इन्द्रियों का वश में करना और मन का निग्रह तथा सुख, दुःख, उत्पत्ति और प्रलय एवं भय और अभय भी (4) तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति ऐसे यह प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरे से ही होते हैं (5) हे अर्जुन! सात तो महर्षिजन और चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु, यह मेरे में भाववाले सबके सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं कि जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है (6) जो पुरुष इस मेरी परमैश्वर्यरूप विभूति को और योगशक्ति को तत्व से जानता है वह पुरुष निश्चल ध्यानयोग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है (7)

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे से ही सब जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार तत्व से समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए, बुद्धिमान भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं (8) वे निरन्तर मेरे में मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं (9) उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं (10) हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में एकीभाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाशमय तत्वज्ञानरूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूँ (11)

इस प्रकार भगवान् के वचनों को सुनकर अर्जुन बोले, हे भगवन् ! आप परम ब्रह्म और परम धाम एवं परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं, वैसे ही देवर्षि नारद तथा असित और देवलऋषि तथा महर्षि व्यास और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं (12,13) हे केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्त को मैं सत्य मानता हूँ । हे भगवन् ! आपके लीलामय स्वरूप को न दानव जानते हैं और न देवता ही जानते हैं (14) हे भूतों को उत्पन्न करने वाले ! हे भूतों के ईश्वर ! हे देवों के देव ! हे जगत् के स्वामी ! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं (15) इसलिये हे भगवन्! आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को सम्पूर्णता से कहने के लिये योग्य हैं कि जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं (16) हे योगेश्वर ! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और हे भगवन् ! आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं (17) हे जनार्दन ! आपकी योगशक्ति को और परमैश्वर्यरूप वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है अर्थात सुनने की उत्कण्ठा बनी ही रहती है (18)

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं तेरे लिये अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहुँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है (19) हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ (20) हे अर्जुन ! मैं

अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु अर्थात वामन अवतार और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूँ तथा मैं उनचास वायु देवताओं में मरीचिका नामक वायुदेवता और नक्षत्रों में नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ (21) मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ और इन्द्रियों में मन हूँ, भूतप्राणियों में चेतनता अर्थात् ज्ञानशक्ति हूँ (22) मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूँ तथा शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ (23) पुरोहितों में मुख्य अर्थात देवताओं का पुरोहित बृहस्पति मेरे को जान तथा हे पार्थ ! मैं सेनापतियों में स्वामीकार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूँ (24) हे अर्जुन ! मैं महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूँ तथा सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पहाड़ हूँ (25) सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देव-ऋषियों में नारदमुनि तथा गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिलमुनि हूँ (26) तू घोड़ों में अमृत से उत्पन्न होनेवाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा मेरे को जान (27) हे अर्जुन ! मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूँ और शास्त्रोक्तरीति से संतानोत्पत्ति का हेतु कामदेव हूँ, सर्पों में सर्पराज वासुकि हूँ (28) मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरों में अर्यमा नामक पित्रेश्वर तथा शासन करने वालों में यमराज हूँ (29) हे अर्जुन ! मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गिनती करनेवालों में समय हूँ तथा पशुओं में मृगराज और पक्षियों में गरूड़ हूँ (30)

मैं पवित्र करनेवालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूँ तथा मछलियों में मगरमच्छ हूँ और नदियों में श्रीभागीरथी गङ्गा हूँ (31) हे अर्जुन सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी मैं ही हूँ तथा मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात ब्रह्मविद्या एवं परस्पर में विवाद करनेवालों में तत्वनिर्णय के लिये किया जाने वाला वाद हूँ (32) मैं अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व नामक समास हूँ तथा अक्षयकाल अर्थात काल का भी महाकाल और विराटस्वरूप सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ (33) हे अर्जुन ! मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और आगे होनेवालों की उत्पत्ति का कारण हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ (34) तथा मैं गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द तथा महीनों में मार्गशीर्ष का महीना और ऋतुओं में वसन्त ऋतु मैं हूँ (35) हे अर्जुन ! मैं छल करनेवालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ तथा मैं जीतनेवालों की विजय हूँ और निश्चय करनेवालों का निश्चय एवं सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूँ (36)

वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात मैं तुम्हारा सखा और और पाण्डवों में धनंजय अर्थात् तू एवं मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूँ (37) और दमन करनेवालों का दण्ड अर्थात दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छावालों की नीति हूँ और गोपनीय में अर्थात गुप्त रखने योग्य भावों में मौन हूँ तथा ज्ञानवानों का तत्वज्ञान मैं ही हूँ (38) और हे अर्जुन ! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा वह चर और अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरे से रहित होवे, इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है (39) हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिये एकदेश से अर्थात् संक्षेप से कहा है (40) इसलिये हे अर्जुन ! जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान (41) अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है, मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ, इसलिये मेरे को ही तत्व से जानना चाहिये (41)

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्ण और

अर्जुन के संवाद में "विभूतियोग" नामक दसवाँ अध्याय (10)